विचारों और अवधारणाओं को संस्थागत रूप देना

अनिल अंगडिकी



जब हम किसी भी कार्यप्रणाली का कोई उदाहरण देखते हैं तो यह बात साफ़ हो जाती है कि हमें उसे सुधारने, बदलने या छोड़ने के बारे में नए-नए विचार मिलते हैं। मैं शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष रूप से मुख्य धारा की स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में अपने विचारों को एकत्र करने की कोशिश कर रहा हूँ।

बच्चों के लिए सीखने का माहौल बनाने के लिए इस तंत्र के प्रमुख हितधारक शिक्षक हैं। उन्हें भी स्वयं या अपने अधिकारियों से कार्यान्वयन के लिए कई विचार मिलते हैं। लेकिन जब कोई पेशेवर व्यक्ति इन विचारों को शिक्षा तंत्र में संस्थागत रूप देने की कोशिश करता है तो कई चुनौतियाँ सामने आती हैं। मैं अपने अनुभव से कुछ उदाहरण साझा कर रहा हूँ।

जब हमने अपने स्कूल में स्वतंत्रता के साथ ज़िम्मेदारी लाने की बात सोची तो पहले तो हम काफ़ी उलझन में पड़ गए। हमारा संगठन (जहाँ मैं कार्यरत हूँ) एक ऐसी संस्कृति में विश्वास करता है जहाँ बच्चे मुक्त, निडर और निष्पक्ष वातावरण का आनन्द उठाएँ, जो बच्चों और शिक्षकों के बीच एक सच्चा सम्बन्ध स्थापित करने में प्रभावी हो सके और जहाँ बच्चों को बोलने/सवाल पूछने की स्वतंत्रता मिल सके ताकि वे किसी भी विषयवस्तु के बारे में तर्कसंगत रूप से सोच सकें। सुनने में तो इस तरह के विचार अच्छे लगते हैं लेकिन अन्य संगठनों में हमारे पिछले अनुभव इससे अलग थे। हमारे वर्तमान स्कूल के बच्चे छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं और इनमें से कई छोटे बच्चे तो ऐसे घरों से आते हैं जहाँ उनकी जिज्ञासा और पूछताछ का जवाब थप्पड़ से दिया जाता है। इसलिए स्कूल के मुक्त व निडर वातावरण में समय बिताना उन्हें अच्छा लगता है।

हम अपने संगठन के सहायक तंत्र को धन्यवाद देना चाहेंगे क्योंकि वे हमसे कक्षा प्रबन्धन सम्बन्धी चुनौतियों के बारे में और शिक्षकों के सुगमकर्ता के रूप में कार्य करने के बारे में नियमित रूप से बातचीत करते रहते हैं। इसी वजह से हमने नियम-विनियम बनाने की प्रक्रिया में बच्चों की सहभागिता के बारे में सोचना शुरू किया और व्यवहार सम्बन्धित उनकी समस्याओं को कम करने के लिहाज से उनसे इस बारे में नियमित रूप से चर्चा भी की। बेशक़, हमारे इन विचारों (जो कई स्कूलों में व्यवहार में लाए जाने लगे थे) के परिणामस्वरूप हमारी कुछ मान्यताएँ स्थापित होने लगीं लेकिन इसके कारण एक चुनौती और उभरकर सामने आई : बच्चों के माता-पिता या अभिभावक यह समझने लगे कि हम बच्चों को बिगाड़ रहे हैं क्योंकि हम उनके अनुचित व्यवहार के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं करते थे तथा इसके लिए वे हमें दोष देने लगे। उनके लिए यह समझना कठिन था कि समस्याओं के समाधान के लिए बातचीत का सहारा भी लिया जा सकता है विशेष रूप से बच्चों के मामले में।

हमारे समक्ष कुछ उदाहरण ऐसे भी आए जिनमें हमने देखा कि स्कूल में बच्चे अपनी ज़िम्मेदारी की भावना को आत्मसात नहीं कर पा रहे। तब हम कुछ गृहीत विचारों के बारे में सोचने लगे जैसे बच्चों की समितियाँ गठित करना। पहले हमने शिक्षकों की साप्ताहिक बैठक, जिसमें हम अपने सरोकार साझा करते हैं, में इस विचार पर चर्चा की और फिर इस विचार के साथ बच्चों के पास गए। यद्यपि उनमें से कुछ बच्चे समझ नहीं पाए कि हम उनसे क्या कहने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन फिर भी ऐसा करने के लिए तैयार हो गए क्योंकि बच्चों को नई चीज़ें आम तौर पर आकर्षित करती हैं। मुझे लगता है कि समितियों में पूरे स्कूल को शामिल करना एक सकारात्मक क़दम था क्योंकि इससे स्कूल का प्रत्येक सदस्य (छोटा हो या बड़ा) कम-से-कम किसी एक समिति के कार्यों में भाग ले सका। कुल आठ समितियों का गठन किया गया और हर समिति की भूमिकाओं और ज़िम्मेदारियों को सदस्यों द्वारा नियत किया जाना था। समिति के सदस्य के रूप में प्रत्येक शिक्षक ने इस कार्य में योगदान देना शुरू कर दिया। पहले साल के दौरान बच्चों और शिक्षकों को साथ में लाकर कार्य करना मुश्किल हुआ क्योंकि हमें खुद भी स्पष्ट रूप से पता नहीं था कि क्या करना है और कैसे करना है। मुझे लगता है कि दूसरे के विचारों के अनुरूप कार्य करना कठिन होता है विशेष रूप से तब जब उस कार्य का बृहत उद्देश्य धीरे-धीरे प्राप्त होता है। कार्यों को प्रभावी ढंग से करने की रणनीतियों पर चर्चा करने के लिए समितियों को मिलकर कुछ और बैठकें करने का सुझाव दिया गया।

अधिकांश बच्चों में शुरू का उत्साह धीरे-धीरे कम होता नज़र आया। या तो उन्हें यह विचार ही उत्साहजनक नहीं लगा और या उन्हें निर्णायक भूमिका निभाने का मौक़ा नहीं मिला। जो सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे वे खुद-ब-खुद कार्य करने लगे और नित्य किए जाने वाले कार्य निपटाते रहे। ज़िम्मेदारी के

प्रत्यायोजन का विचार उत्पन्न करना बहुत मुश्किल था। पहले वर्ष के दौरान एक या दो समितियों में बच्चों को भूमिका देने की चुनौती पर सभी के साथ चर्चा की गई और अब हर माह नई समितियों में सदस्यों के आवर्तन की प्रथा लागू की गई है, और दो नई समितियाँ भी गठित की गई हैं। सभी कक्षाओं और शिक्षकों के सदस्यों के साथ दस समूह गठित किए गए और एक समिति में कार्य करने के लिए समूह का चुनाव प्रार्थना सभा में पर्चियाँ डालकर किया गया। ऐसा करने से प्रत्येक बच्चे को एक साल में सभी समितियों में कार्य करने का अवसर मिलता है।

अब समिति की टीम बैठकों, ज़िम्मेदारी के प्रत्यायोजन और बच्चों की अपनी भूमिका निभाने आदि के बारे में कुछ नियमितता आई है। अब स्टाफ के सदस्य मुद्दों और चुनौतियों के समाधान के लिए लगातार समिति के सदस्यों की सहायता करते हैं और इन बातों को प्रार्थना सभा में प्रस्तुत किया जाता है। इससे यह विचार एक रचनात्मक दिशा में आगे बढ़ रहा है। इस प्रकार स्कूल की समितियाँ स्कूल के दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों जैसे मध्याह्न भोजन, स्कूल की प्रार्थना सभा, स्कूल का बग़ीचा और उसका रखरखाव, स्कूल की सफ़ाई, स्कूल और कक्षा के पुस्तकालय का रखरखाव, स्कूल के कार्यक्रमों और आयोजनों की रूपरेखा बनाना और उनका प्रबन्धन करना आदि में आने वाली चुनौतियों का समाधान कर रही हैं। मैं इस बात का दावा नहीं कर रहा कि हमने पूरी तरह से सफलता प्राप्त कर ली है लेकिन यह विचार स्कूल संचालन के प्रबन्धन में साझा ज़िम्मेदारियों के विकास में धीरे-धीरे योगदान दे रहा है। हमने अग्रलिखित बातों में प्रगति होती देखी है - बच्चों द्वारा चर्चा के लिए बैठकों का आयोजन करना, सदस्यों के मध्य ज़िम्मेदारियाँ प्रत्यायोजित करना, अपनी समिति के लिए नियम बनाना, मुद्दों को पहचानकर उन्हें सबके सामने रखना, आवर्तन के आधार पर सभी सदस्यों को सभी समितियों में कार्य करने का अवसर देकर पदानुक्रम की भावना कम करना एवं स्कूल सम्बन्धी अभ्यासों और तंत्र के बारे में अपनी समझ बढ़ाना। कुछ क्षेत्रों पर हम अभी भी काम कर रहे हैं जैसे अपने और दूसरों के प्रति ज़िम्मेदारी की भावना विकसित करना, अपने घरों में बातचीत करने का वातावरण बनाने के लिए बच्चों के माता-पिता में जागरूकता पैदा करना, आदि।

मैं एक उदाहरण और साझा करना चाहता हूँ। मैंने छोटे बच्चों के साथ एक प्रयोग किया। जो कुछ विचारों/योजनाओं को पूरा करने में मेरी सफलता और विफलता से सम्बन्धित है (चूँकि मैंने पहले यह प्रयोग नहीं किया था)। पिछले दो-तीन सालों से हम बच्चों को पुस्तकालय से सम्बन्धित गतिविधियों के साथ जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं जिसके बारे में हमारे समूह में चर्चा भी हुई थी।

मैं यह सोच रहा था कि हम बच्चों में समाचार पत्र या पत्रिकाएँ पढ़ने की आदत कैसे डालें। तो इसके लिए मैंने चौथी कक्षा के बच्चों के सामने दैनिक समाचार पत्रों से कुछ रोचक समाचार पेश करने शुरू किए। जो समाचार उनके साथ साझा किए गए, उनमें से बच्चे दुर्घटनाओं और दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से सम्बन्धित समाचार और रिपोर्ट सुनने में बहुत रुचि दिखाते थे। मैंने भाषा शिक्षक से इस बारे में चर्चा की और उन्होंने बच्चों से समाचार पत्रों में से कुछ उद्धरण लिखकर कक्षा में प्रदर्शित करने को कहा। इसे आवर्तन के आधार पर किया जाता था और कक्षा में इस पर थोड़ी चर्चा भी की जाती थी ताकि सभी विद्यार्थियों की भागीदारी हो सके। शुरू में तो बच्चे उद्धरण लिखने के लिए उत्सुक थे लेकिन धीरे-धीरे यह अभ्यास कमज़ोर पड़ने लगा। शायद इसका कारण यह हो कि कुछ बच्चों को पढ़ने और लिखने में दिक़्क़त होती थी या उद्धरण को कक्षा में प्रदर्शित करने के बाद वाली गतिविधि पर भली-भाँति ध्यान नहीं दिया जाता था। इसलिए मैंने सोचा कि समाचार पत्र की अवधारणा को व्यवहारिक रूप देने के लिए मुझे कुछ और करना चाहिए। जब भी मैं बच्चों से समाचार पत्र पढ़कर पढ़े गए समाचार को साझा करने के लिए कहता तो अक्सर ऐसा हो नहीं पाता था। क्योंकि उन्हें ऐसे उपयुक्त समाचार नहीं मिलते थे जिन्हें वे समझ सकते हों या जो उनके लिए दिलचस्प हों। इसलिए हमने सोचा कि अपने स्कूल का ही एक समाचार पत्र बनाया जाए जिसमें बच्चे स्कूल के सन्दर्भ में ही समाचार लिखें। लेकिन बच्चों को यह अवधारणा समझाना मेरे लिए मुश्किल था। यहाँ तक कि मिश्रित अधिगम स्तर वाले बच्चों के एक छोटे समूह के साथ समाचार पत्र शुरू करने की मेरी कोशिश नाकाम रही क्योंकि बच्चे मेरे विचारों को समझने में असमर्थ थे। फिर मैंने यह सोचकर इस विचार को त्याग दिया कि शायद ये बच्चे बहुत छोटे हैं और मेरी परिकल्पना को समझ नहीं पा रहे हैं।

इस साल मुझे चौथी कक्षा के उन्हीं बच्चों के पुस्तकालय के पीरियड मिले जो अब पाँचवीं कक्षा में हैं। तो मेरे मन में फिर वही पुराना विचार जागा कि बच्चों से समाचार पत्र वाला कार्य करवाना चाहिए। इसके लिए मैंने लगभग दो महीने तक कुछ क्रियाकलापों की योजना बनाई जिनमें, समाचार पत्रों से समाचार चुनना, उन्हें पढ़ना, कुछ पर चर्चा करना, समाचारों के अलावा अन्य जानकारियाँ एकत्र करना, बच्चों के छोटे समूह बनाकर पुराने समाचार पत्रों से रोचक और विविध विषयों वाले समाचारों को काटना, इन कतरनों से एक समाचार पत्र बनाना और उसे प्रदर्शित करना आदि, शामिल थे। धीरे-धीरे मैं उसी

बात पर आया कि 'क्या हम स्कूल का समाचार पत्र निकाल सकते हैं?' इस बार उन बच्चों के चेहरे पर इस काम को लेकर पिछली बार वाली अस्पष्टता नहीं थी। ये वही बच्चे थे जिन्हें मैं पहले अपनी बात समझाने में असफल रहा था। बच्चे ख़ुशी-ख़ुशी मेरी बात मान गए और हमने पाँच समूह बनाए और इस कार्य की प्रकृति और प्रयासों के बारे में सोचने लगे। चर्चा के दौरान मैंने दैनिक समाचार पत्र के बदले साप्ताहिक पत्र की बात कही क्योंकि हमारे स्कूल में प्रतिदिन समाचार जुटाना मुश्किल होता। इसलिए पहले समूह ने समाचार एकत्र करने शुरू किए जैसे कि अन्य कक्षा के बच्चों द्वारा लिखी गई कविताएँ/कहानियाँ और चित्र। इस बार मैंने इस बात का ध्यान रखा कि इस पहल को बीच में न छोड़ूँ और इसलिए मैं प्रतिदिन टीम के कार्यों की प्रगति देखता और उन्हें प्रेरित करता। अन्त में मेरे और मेरी टीम के समक्ष वह हर्षपूर्ण क्षण आया जब हम अपने स्कूल का पहला साप्ताहिक पत्र निकाला जिसका नाम था '*शाला वारा पत्रिके* ' (स्कूल साप्ताहिक पत्र) और यह नाम भी बच्चों ने ही सुझाया था।

मैं यहाँ अपनी सफलता का दावा नहीं कर रहा क्योंकि समाचार पत्र के बड़े हिस्से में चित्र/पेंटिंग, कविताएँ/कहानियाँ थीं और एक कोने में समाचार दिए गए थे। लेकिन इस पहल से मुझे यह विश्वास हुआ कि बच्चे धीरे-धीरे विचारों को समझ सकते हैं। सभी समूहों ने नियमित रूप से साप्ताहिक पत्र निकाले और उन्हें स्कूल की प्रार्थना सभा में इसके विमोचन का अवसर भी मिला। अब अन्य कक्षाओं के बच्चों ने भी स्कूल का साप्ताहिक पत्र निकालने में रुचि दिखाई। मैंने उनकी बात मान ली और कक्षा छह के बच्चों ने साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया है (जिसमें अधिक समाचार हैं और जिसके साथ अधिक शिक्षक भी जुड़ गए हैं)। मैं व्यक्तिगत तौर पर प्रसन्न हूँ कि धीरे-धीरे समाचार पत्र की अवधारणा संस्था के साथ समेकित हो रही है। अग्रणी समूह के विद्यार्थियों ने वर्तमान साप्ताहिक पत्र में अपनी भूमिका के बारे में पूछा तो मैंने उनसे कहा कि वे कार्यरत समूह को और अधिक समाचार/लेख देकर उनकी मदद कर सकते हैं। लेकिन अभी भी मैं पूरी तरह से खुश नहीं हूँ। मेरा वह मूल विचार, कि बच्चों को समाचार पत्र पढ़ने की ओर प्रवृत्त करना है, साकार नहीं हो पाया है क्योंकि जिन बच्चों के साथ मैं काम कर रहा हूँ उनमें से अधिकांश समाचार पत्र नहीं पढ़ते। मेरा प्रयास जारी है तथा मैं कुछ और क्रियाकलापों की योजना बना रहा हूँ।

मुझे अपने या दूसरों के विचारों को साकार करने से सम्बन्धित कई अनुभव हुए हैं जो आंशिक रूप से सफल या असफल रहे हैं और इसके अनेक कारण हैं। मुझे लगता है कि कुछ कारण इस प्रकार हैं :

1. *कार्य को अंजाम देने वाले लोगों का इस विचार के पीछे के औचित्य को न समझ पाना/हितधारकों के साथ स्पष्ट रूप से बातचीत और नियमित रूप से अनुवर्ती कार्रवाई का अभाव।*
2. *सन्दर्भीकरण न होना, विचार के बारे में उच्च अपेक्षाएँ व कठोर रवैया होना (यानी परिवर्तन के कम अवसर) अथवा खुलापन होना लेकिन विचारों की मौलिकता न खोना।*
3. *अगर किसी विचार को भली प्रकार से समझा न जाए/व्यक्ति द्वारा उसे अपनाया न जाए तो वह संस्थागत रूप नहीं ले सकता।*
4. *जब तक हम किसी चुनौती को समझ नहीं जाते या अपने कार्य में उस चुनौती का सामना नहीं करते (जिसका सामना दूसरों ने किया है) तब तक हम उसे गम्भीरता के साथ नहीं निपटाते।*
5. *पूरे मामले पर स्पष्टता ज़रूरी है। हमें निष्पादन से पहले, उसके दौरान और उसके बाद के परिणामों को समझ लेना चाहिए।*

शिक्षा के क्षेत्र में एक सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक के कार्य में अनेक प्रयोग होते रहते हैं और शिक्षक उन सभी विचारों के साथ संघर्ष करते रहते हैं जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा जैसे मार्गदर्शी दस्तावेजों, शिक्षाविदों द्वारा बताए गए शिक्षा के सिद्धान्तों या किसी स्कूल विशेष के विचारों में दिए गए होते हैं। इन्हें संस्थागत रूप देते समय शिक्षक को अपनी ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए, उनमें अपने विचार जोड़ने चाहिए ताकि सीखने में वृद्धि हो। अगर इन्हें चिन्तन डायरियों में प्रलेखित किया जाए तो वे हमारे शिक्षा तंत्र की गुणवत्ता में बहुत बड़ा योगदान दे सकते हैं।

अनिल अंगडिकी यादगीर,कर्नाटक में अज़ीम प्रेमजी स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं। वे पिछले पाँच वर्षों से इस स्कूल में कार्यरत हैं। उनका कहना है कि यहाँ उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अर्थ और उद्देश्य के बारे में सोचने का अवसर मिला। वे एम.एससी. और बी.एड. की डिग्री प्राप्त कर चुके हैं और विगत दिनों में वे प्री-यूनिवर्सिटी कॉलेज के विद्यार्थियों के साथ कार्यरत थे। उनसे anil.angadiki@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल